A Multidisciplinary Indexed International Research Journal
ISSN: 23203714 Volume : XII
Airo
ADHYAYAN
INTERNATIONAL
RESEARCH
ORGANISATION

वेदों में पर्यावरण के स्त्रोत

– डॉ. सरोज गुप्ता

Declaration of Author: I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.

वैदिक वाङ्मय समस्त ज्ञान का भण्डार है। धर्म, दर्शन, नीति और ज्ञान–विज्ञान के लगभग सभी विषयों पर वेद में गहन चिन्तन उपलब्ध होता है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी विचारों का मूल रूप वेद में दिखाई देता है। वैज्ञानिक अन्वेषण और पर्यावरण समस्या के निदान की दिशा में भी हमें वेद में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन मिलता है। आज पर्यावरण–प्रदूषण विश्व के सम्मुख एक विकट संकट बना हुआ है, ऐसे में वेद में निहित पर्यावरण–संरक्षण से सम्बद्ध तथ्यों से लाभ उठाकर पर्यावरण प्रबंधन की दिशा में तेजी से बढ़ना हमारा कर्त्तव्य है।

पर्यावरण परि + आवरण शब्द का अर्थ है – चारों ओर से वरण अर्थात् आवरण।

Einstein once defined environment as 'everything that is not me'. In other words we can say that final analysis of everything present outside an individual is called as environment.

हमारे प्राकृतिक पर्यावरण के मुख्य अंग हैं – पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, वनस्पतियां, पशु–पक्षी आदि। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश – पंच महाभूत प्रकृति में व्याप्त हैं और हमारे जीवन में भी। इसीलिए पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति और मानव के बीच पारस्परिक संतुलन अति आवश्यक है। प्रकृति (Nature) हमारे हित में लगी हुई है, तो हमें भी उसके स्वरूप की रक्षा करनी है। शुद्ध हवा, जल, पृथ्वी, पेड़–पौधों आदि के बिना मानव–जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हजारों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने इस सत्य को भली भाँति समझा था। उन्होंने मंत्रों में प्राकृतिक शक्तियों और तत्त्वों की देवताओं के रूप में स्तु तियों की और पर्यावरण की शुद्धि के लिए मनुष्यों को जागरुक किया, जिनका यहाँ संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है–

वायु संरक्षण

वैदिक ऋषि पर्यावरण के सभी पक्षों के प्रति सतत् जागरुक और सतर्क ही नहीं थे अपितु उनकी सुरक्षा एवं वृद्धि के प्रति भी सचेत और सावधान थे। शुद्ध वायु जीवन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वैदिक ऋषि को 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' दो प्रकार की वायु के विषय में सम्यक् ज्ञान था। शुद्ध वायु बल प्रदान करती है तो दूषित वायु उसे दूर फेंकती है। उन्हें यह भी ज्ञात था कि वायु में कई प्रकार की गैस होती है। जिनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं। प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है–

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो धेहि जीवसे।। **ऋग्वेद 10.186.3**

अर्थात् इस वायु के गृह में जो अमरत्व की धरोहर निहित है वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। शुद्ध वायु कई रोगों के लिए औषधि का काम करती है। तपेदिक जैसे भयंकर रोगों के लिए यह रामबाण है।

परन्तु आज हमारा वायुमण्डल पूर्ण रूप से दूषित हो चुका है। परमाणु बमों के बार–बार किए गए परीक्षणों से, कल–कारखानों के विषाक्त धुएं से, पेट्रोल–डीजल आदि से समस्त वायुमण्डल इतना अधिक दूषित हो गया है कि आज दमा, खांसी, श्वासरोग, हृदय रोग के रोगियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वैदिक ऋषि किसी भी प्रकार के प्रदूषण को स्वीकार नहीं करते। वायुमण्डल को शुद्ध रखने के लिए उन्होंने यज्ञविधान किया। वेद के निम्न मंत्र वायु प्रदूषणों के निराकरण से संबंधित है–

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि
सुतानां पीतिमर्हसि।
डतो विहुत्मतीनां विषां ववर्जुषीणम्
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिर घृतं दुह्रत आषिरम्।।

प्रस्तुत मंत्र में वायु की शुद्धता की तरफ संकेत है। यजमान जब सोम रस का अभिषव करते हैं तो सर्वप्रथम पहली आहूति वायु के लिए अर्पित की जाती है क्योंकि शुद्ध वायु ही हमारे जीवन का आधार है। सोम की पत्तियां व तन्तु तोड़ना, पत्थर में दबाकर उनका रस निकालना, रस को बड़े–बड़े छलनों में छानकर पवित्र करना, द्रोण नामक पात्रों में एकत्रित करना, यह सारी प्रक्रिया सोमरस का अभिषव कहलाती है। हे वायु! यज्ञ करने वाले निष्पाप यजमान तुम्हारे लिए जो आहुति प्रदान करते हैं उसके तुम सर्वथा योग्य हो। यज्ञ के आश्रयभूत दूध और घी हैं। अतः समस्त गौएं तुम्हारे लिए दूध और घी देती हैं। वस्तुतः गौएं घी नहीं देती दूध ही देती हैं। परन्तु चूंकि घी दूध से बनता है, अतः हवि के आश्रय भूत घी का कारण भी गौओं को कह दिया गया है।

प्रस्तुत मंत्र में वायु का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उसके संरक्षण की ओर भी ध्यानाकर्षित किया गया है–

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावषं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य श्रृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम।।

प्रस्तुत मंत्र में वायु की देवता रूप में स्तुति करते हुए कहा गया है कि यह वायु देवता सब देवताओं की आत्मा है क्योंकि देवता भी वायु के बिना जीवित नहीं रह सकता। श्वास प्रश्वास क्रम तो उनका भी चलता रहता है। वायु के बिना जीवन की कल्पना करना 'शशश्रृंग' और 'खपुष्प' के समान असंभव है। अतः वायु से ही देवता जीवित रहते हैं और वायु से ही सांसारिक प्राणी भी प्राण धारण करते हैं।

प्रस्तुत मंत्र में जब वायु की देवता रूप में स्तुति की जा रही है। उसके गौरव का बखान किया जा रहा है, उसकी पूजा करने का विधान किया जा रहा है तो यह सुस्पष्ट है कि वायु को प्रदूषित न करते हुए उसका संरक्षण करना हम सबका उत्तरदायित्व है।

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूषिं तारिषत्।। **ऋग्वेद 10.186.11**

प्रस्तुत मंत्र में वायु को हृदय रोग दूर करने वाला बतलाया गया है। शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है। हृदय रोग के रोगी को लंबी सांस लेने के लिए कहा जाता है। क्योंकि इस प्रकार वायु के श्वास–प्रश्वास से धमनियां खुलने की संभावना रहती है। इसके अतिरिक्त योग द्वारा हृदय रोग ठीक किया जा सकता है। वर्तमान युग में योग की लोकप्रियता पुनः अत्यधिक बढ़ गयी है। योग का अर्थ ही प्राणायाम अर्थात् श्वास और प्रश्वास को नियंत्रित करना है।

प्रस्तुत मंत्र में वायु द्वारा हृदय रोग के उपचार की बात कही गई है। इसी प्रकार वायु द्वारा यक्ष्मा रोग के निदान की बात कही गई है।

आ त्वागमं शान्तातिभिरथे अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभाषं परा यक्ष्मं सुषमि।।

अर्थात् हे रोगी मनुष्य! मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षणों के साथ आया हूँ। तेरे लिए कल्याणकारी बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे यक्ष्मा रोग को दूर करता हूँ।

परन्तु यह ध्यातव्य है कि उसी वायु में रोगनिवारक शक्ति है तो शुद्ध और प्रदूषणरहित हो अन्यथा यह लाभकारी होने के स्थान पर अनिष्टकारी हो जाती है। संक्षेप में सब अनिष्टों और रोगों से बचने के लिए वायुसंरक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

वृक्ष संरक्षण

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि वैदिक ऋषि पर्यावरण के प्रति सतत् जागरुक था। पर्यावरण में जल, वायु, वृक्ष, भूमि, पशु–पक्षी, ध्वनि इत्यादि सभी सम्मिलित हैं।

वृक्षों की उपयोगिता सर्वविदित है। वे फल, फूल, सब्जी, अन्न, औषधियां, जड़ी–बूटियां आदि प्रदान कर प्राणियों का पालन–पोषण तो करते ही हैं परंतु इसके साथ ही वर्षा को भी नियंत्रित करते हैं, भूमि के उपाजाऊपन को नष्ट होने से बचाते हैं, सूर्य के ताप को नियमित कर चर्म रोगों से रक्षा करते हैं, सौंदर्य–वृद्धि करते हैं, लकड़ी प्रदान करते हैं, जो विभिन्न प्रकार से उपयोगी है। किसी भी वृक्ष का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो उपयोगी न हो। वैदिक ऋषि ने इसी कारण उनकी देवतावत् पूजा की, आवश्यकता से अधिक ग्रहण न कर उनका संरक्षण एवपं संपोषण किया।

परन्तु आजकल बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण इत्यादि अनेक कारणों से वृक्षों और वनों को तेजी से काटा जा रहा है। उनके प्रति मनुष्यों की संवेदनशीलता प्रायः समाप्त हो गई है। इस विभीषिका को आज समस्त संसार अनुभव कर रहा है। वैदिक ऋषियों ने निम्न मंत्रों में वृक्षों की उपयोगिता प्रतिपादित करते हुए वृक्ष संरक्षण की ओर ध्यानाकर्षण किया है–

शतं वो अम्ब धामानि सहस्त्रमुत वो रूहः।
अध शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत।। **ऋग्वेद 10.17.2**

परन्तु मंत्र में औषधियों को मातारूप कहा गया है क्योंकि जिस प्रकार माता दूध से अपनी संतान का पालन–पोषण करती है, उसी प्रकार वनस्पतियां भी अनेक भोज्य पदार्थ व अन्य उपयोगी वस्तुएं प्रदान करके हमारा भरण–पोषण करती हैं। इसका अभिप्राय संभवतः यह है कि वनस्पतियां प्राणियों का अनेक प्रकार से उपचार करती हैं, उसके अनेक कार्यों को सिद्ध करती हैं। वे मुझे निरोगी बनाएं क्योंकि वृक्षों में आरोग्यता प्रदान करने की शक्ति है।

आयुर्वेद के अनुसार कोई भी रोग ऐसा नहीं है जो वृक्षों के द्वारा असाध्य हो। आयुर्वेद पेड़–पौधों, जड़ी–बूटियों, पत्तों इत्यादि के द्वारा ही सब रोगों का प्रतिकार करने वाला शास्त्र है।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरूप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वास आत्मनं तव पुरुष।।

प्रस्तुत मंत्र में औषधियों को दिव्य गुणों से युक्त व माता के समान बतलाया गया है। जिस प्रकार दिव्य गुणों से युक्त देवता कुछ भी कर पाने में असमर्थ हैं, असंभव को भी संभव बनाने में सक्षम हैं, उसी प्रकार औषधियां भी कुछ चमत्कार कर सकती हैं। असाध्य रोगों को भी दूर कर सकती हैं। वे माता के समान ममतामयी हैं। जिस प्रकार माता अपने दूध, स्नेह, वात्सल्य और संरक्षण से सन्तान का पालन–पोषण करती हैं, उनका भरण–पोषण करती हैं।

पृथिवी देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हि सिषम् व्रजं गच्छ गोष्ठानं
वर्षतु ते द्योर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या शतेन
पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्।

प्रस्तुत मंत्र से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग में वृक्ष संरक्षण कितना अधिक महत्त्वपूर्ण था। वृक्षों की रक्षा करने का उत्तरदायित्व **'अवि'** नामक देवता का था। **'अवि' अव्–रक्षणे** से ही निष्पन्न है। तद्नुसार अवि का अर्थ ही 'रक्षा करने वाला' देवता है। दूसरे की रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं नियमों का, सत्य का पालन करने वाला हो। यह अवि देवता 'ऋत' से व्याप्त है। 'ऋत' का अर्थ प्राकृतिक नियम है। यस्काचार्य ने इसका अर्थ 'सत्य' किया है। परन्तु सबका संप्रेषित अर्थ यही है कि अवि देवता रक्षा करने के कार्य में कभी प्रसाद व असावधानी नहीं करता। उसके रूप से अर्थात् उसी के कारण ये वृक्ष हरे–भरे हैं। वृक्षों की सार्थकता तभी है जब वे हरे–भरे रहें और फलते–फूलते रहें अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि अवि देवता ने ही हरे–भरे वृक्षों का रूप धारण कर लिया है। हरी मालाओं वाले होना, वृक्षों की प्रचुरता, बहुलता व सघनता के सूचक हैं।

भूमि संरक्षण

विश्व साहित्य में प्रथम बार भूमि को माता व स्वयं को उसका पुत्र बतलाया गया है – *'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'*। भूमि विविध रसों, वनस्पतियों, औषधियों, खनिज पदार्थों इत्यादि से सब प्राणियों का भरण–पोषण माता के समान करती है। यह विविधरूपा, वसुन्धरा, हिरण्यवक्षा, विष्वम्भरा है।

प्रस्तुत सूक्त में ऐसी विविधरूपता वसुन्धरा की कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में स्तुति की गई है। जब पृथ्वी समस्त प्राणिजगत का मातृवत् पालन–पोषण करती है तो मनुष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह यथाशक्ति उसका संरक्षण, संवर्द्धन एवं संपोषण करे। उससे उतना ही ग्रहण करे जितना आवश्यक है। यही उसका संरक्षण है।

यत ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त उर्जस्तन्वः सम्बभूवुः
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।

प्रस्तुत मंत्र में भूमि से प्रार्थना की गई है कि – हे भूमि! जो भी पदार्थ तुम्हारे मध्य में है अर्थात् जो बहुमूल्य खनिज पदार्थ व अन्य वस्तुएं तुम्हारे शरीर के अन्दर है, जो नाभि में अर्थात् ऊपर है यथा समुद्र नदियां इत्यादि और शक्ति प्रदान करने वाली जो ऊर्जाएं अर्थात् वनस्पतियां, फूल, फल, अन्न, कृषियां इत्यादि तुम्हारे शरीर से उत्पन्न होती हैं, उन सब में हमें स्थापित कर दो अर्थात् हम उनका भोग कर पाएं। माता भूमि है। जिस प्रकार माता दूध आदि से अपनी संतान का पालन–पोषण करती है उसी प्रकार पृथ्वी भी विविध अमूल्य उपहार देकर, भोजन, फल, फूल आदि खाद्य सामग्री देकर, जीवन की मूलभूत आवश्यकता जल प्रदान करके, रहने के लिए निवास देकर मातृवत् हमारा पालन–पोषण करती है। बादल पिता है। भारत कृषि प्रधान देश है, अतः वर्षा का यहीं अत्यधिक महत्त्व है। बादल वर्षा करने वाला है। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की आवश्यकताओं को पूरा करता है, उसी प्रकार बादल भी समय पर वर्षा करके कृषि को सघन कर मनुष्य को समृद्ध व धन–धान्य संपन्न बनाता है।

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
म ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।

प्रस्तुत मंत्र में भूमि के संरक्षण, संवर्द्धन एवं संपोषण के प्रति चिन्ता एवं संवेदना प्रकट करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी को अनेक प्रयोजनों से विवशतावश यथा बीज बोने के लिए, खनिज पदार्थ निकालने के लिए तालाब सरोवर एवं कुआं आदि बनाने के लिए खोदना पड़ता है परन्तु यह प्रार्थना की गई है कि मैं तुम्हारे जिस भी भाग को खो दूँ वह शीघ्रता से भर जाए। यदि कुआं आदि बनाने के लिए खनन किया गया है तो वह जल से परिपूर्ण रहे इत्यादि ताकि तुम्हारा खनन रूपी घाव यथाशीघ्र भर जाए।

इसी के साथ प्राणिमात्र को यह संदेश भी दिया गया है कि अनावश्यक रूप से पृथ्वी का खनन करके उसके सौंदर्य को विकृत न किया जाए।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण भी आज की ज्वलंत समस्या है। बढ़ती हुई जनसंख्या, वाहनों की उत्तरोत्तर वृद्धि, अपार जनसमूह एवं सर्वत्र व्याप्त असंतोष, कलह, द्वेष, ईर्ष्या भाव, वैमनस्य, असहिष्णुता आदि के साम्राज्य के कारण ध्वनि प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। परन्तु वैदिक ऋषि उस समय भी ध्वनि प्रदूषण के प्रति चौकन्नी दृष्टि रखता था। प्रस्तुत मंत्र समूह इसी समस्या की तरफ ध्यानाकर्षित कर उसका समाधान भी करता है। प्रस्तुत मंत्र यजुर्वेद के 26वें अध्याय का 15वां मंत्र है–

उपह्वे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत।।

प्रस्तुत मंत्र में बतलाया गया है कि पवित्र और शांत वातावरण में बैठकर ध्यान लगाने से मन और चित्त की एकाग्रता अधिक होती है। पर्वतों की तलहटियां तथा नदियों के संगमस्थल चित्तवृत्ति को एकाग्र करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान है जहाँ सर्वत्र पूर्ण शांति होती है, जल की कलकल ध्वनि कानों में अमृत घोलती है, मन्द–मन्द शीतल शुद्ध वायु प्रवाहित होती रहती है, पक्षियों का कलरव और भैरों की गूंज समस्त वातावरण को मधुर, रमणीय, संगीतमय व पवित्र बना देती हैं। ऐसे स्थानों पर जो व्यक्ति समाधिस्थ होने का प्रयत्न करते हैं वे मेधावी विद्वान बन जाते हैं।

वस्तुतः बाह्य सृष्टि के जो पदार्थ हैं उन्हीं की अल्प अंश लेकर हमारा शरीर बनता है। इसी कारण यदि बाह्य सृष्टि में शांति है तो शरीर के विभिन्न अंगों में भी शांति रहेगी। जब हमारे सभी कर्म शांतिदायक हो जाएंगे तो ध्वनि प्रदूषण की समस्या उत्पन्न नहीं होगी क्योंकि इलाज करने से अच्छा है कि उसके कारण को दूर कर दिया जाए।

जल संरक्षण

जल जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। मनुष्यों की शारीरिक संरचना में जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जल की कमी (Dehydration) हो जाने से मृत्यु तक हो सकती है। अतः जल के बिना जीवन की कल्पना करना भी असंभव है। सृष्टि का प्रारंभ भी जलों से ही हुआ। हिरण्यगर्भ सूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि प्रारंभ में सर्वत्र जल ही जल व्याप्त है।

इस पृथ्वी का तीन चौथाई भाग जल ही है। जो जल हमें जीवन प्रदान करता है, उस जल को प्रदूषण रहित रखना मनुष्य का परम धर्म है, परम् कर्त्तव्य है। परन्तु यह अत्यंत खेद का विषय है कि आज स्वार्थवश उसे दूषित किया जा रहा है। आज कूड़ा–करकट तथा घरों के मल को प्रवाहित करने वाली नालियों तथा नाले नदियों में जाकर गिरते हैं। रासायनिक पदार्थों से युक्त कारखानों का दूषित जल प्रदूषण को बढ़ावा दे रहा है। नदियों में शवादि बहाकर उन्हें भी अपवित्र किया जा रहा है।

परन्तु वेद जल प्रदूषण को तनिक भी स्वीकार नहीं करते। यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है – ***'मा अपो हिंसी'***। वस्तुतः जल संरक्षण के मूल मंत्र वेदों में ही निहित हैं। वहाँ तो यह प्रार्थना की गई है कि जल हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र के समान हो **'सुमित्रिया न आपः'। (यजुर्वेद 6:22)**

निम्नलिखित मंत्र समूह जलसंरक्षण से संबंधित है–

अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषज।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेष जीः।।

प्रस्तुत मंत्र में 'सोम' चन्द्रमा का वाचक भी हो सकता है। चन्द्रमा को औषधिपति कहा गया है क्योंकि चन्द्रमा वनस्पतियों का अधिदेवता तथा पोषक है। यहाँ जल के अंदर समस्त औषधियां विद्यमान कही गई हैं। समस्त कृषि जल पर ही निर्भर है। सबको सुख देने वाली अग्नि भी जल में है। यहाँ संभवतः जल से उत्पन्न की जाने वाली विद्युत

(Hydro-Electricity) की तरह संकेत है। वाड़वाग्नि भी जल से उत्पन्न अग्नि की वाचक है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि को उस समय भी यह ज्ञान था कि जल बिजली उत्पन्न करने का उत्तम साधन है। वर्तमान युग में बिजली का महत्त्व तथा उपयोगिता कौन नहीं जानता। सभी विद्युत उपकरण – कूलर, पंखा, एयरकंडीशन, हीटर, दूरदर्शन आदि बिजली से ही संचालित होते हैं।

'जल ही सब औषधियां हैं' इसका तात्पर्य यह है कि सभी रोगों को दूर करने की क्षमता जल में है। तैत्तरीयारण्यक में जल का अमृत कहा गया है – ***'अमृत वै आपः'***। बृहरादण्यकोपनिषद् में भी इसे प्राणिमात्र के लिए मधु बतलाया गया है। ऋग्वेद में अन्यत्र भी जल को अमृतमय और सर्वभेषज्यमय बतलाया गया है – ***'अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।***

जल ही औषधि है। स्नानादि करके व जलपानादि करके मनुष्य महान् सुख का अनुभव करता है। मनुष्य में उत्साह और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। वह स्वयं को तरो–ताजा अनुभव करता है। इसी प्रकार जल पीने से पिपासा तो शान्त होती ही है साथ ही जलन, गैस, कब्ज आदि रोग भी दूर होते हैं। समुद्र के खारे पानी से स्नान करने से चर्मरोग दूर हो जाते हैं। प्रायः सभी रोग चलचिकित्सा से साध्य हैं। जल सब रोगों की औषधि है। अथर्ववेद में भी जल को रोगनाशक और आरोग्यवर्धक कहा गया है– ***'इमा आपः प्र भराम्ययक्षा यक्ष्मनाशनीः'।***

निम्न मंत्रांश तैत्तरीय आरण्यक से लिया गया है। यह कृष्ण यजुर्वेद का आरण्यक ग्रंथ है – ***'नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात्'।*** अर्थात् जलों में मूत्र और मल त्याग न करें।

प्रस्तुत मंत्रांश वैदिक ऋषि की जल संरक्षणता का सूचक है। मनुष्य समुद्र, नदियों, तालाबों, सरोवरों में स्नान करते समय प्रायः मूत्र त्याग तो निःसंकोच कर ही देते हैं, परन्तु कभी–कभी मल त्याग भी कर देते हैं जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। ऐसा करना शास्त्रों में सर्वथा निषिद्ध है। जल में मलमूत्र त्याग आदि का तथा कूड़ा–करकट बहाने का निषेध करने के निम्न कारण हैं–

1. सर्वप्रथम तो नदियों में मल–मूत्र करना अथवा बहाना धार्मिक दृष्टि से ही अनुचित है। हमारी संस्कृति में जब नदियों और समुद्रों को देवी–देवता के रूप में पूजा गया है तब उनमें किसी भी प्रकार की गंदगी डालना अनैतिक एवं अधार्मिक है।
2. स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ऐसा करना हानिकारक है क्योंकि मूत्र और विष्ठा में अनेक रोगों के कीटाणु होते हैं। जब अन्य व्यक्ति उसी जल को पीते हैं तो वही कीटाणु उनके शरीर में जाकर उन्हें रोगग्रस्त कर देते हैं।
3. केवल मनुष्य ही नहीं, जल में रहने वाले अन्य प्राणी मछली, बतख आदि भी उससे आक्रान्त हो जाती है और जब मनुष्य उन्हें खाते हैं तो अप्रत्यक्ष रूप से वे रोगग्रस्त हो जाते हैं।

इस प्रकार वेदों में वर्णित वायु, वृक्ष, जल संरक्षण से संबंधित मंत्रों को देखकर यह ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि भी पर्यावरण के प्रति पूर्ण जागरुक थे। प्रकृति के अत्यंत समीप होने के कारण उससे प्रभावित भी थे और प्रकृति की भिन्न–भिन्न रूपों में पूजा करते थे। इसीलिए भूमि को माता के रूप में, वायु को देवता मानकर, वृक्षों को अवि देवता के रूप में, जल को औषधिपति के रूप में पूजा करते हुए मंत्र प्राप्त होते हैं।